श्रीमद् भागवत रसिक कुटुंब

शिक्षाष्टकम्

चेतोदर्पणमार्जनं(म्) भवमहादावाग्निनिर्वापणं(म्),

श्रेयः(ख्) कैरवचन्द्रिकावितरणं(वँ) विद्यावधूजीवनम्।

आनन्दाम्बुधिवर्धनं(म्) प्रतिपदं(म्) पूर्णामृतास्वादनं(म्),

सर्वात्मस्नपनं(म्) परं(वँ) विजयते श्रीकृष्ण सं(ङ्)कीर्तनम्॥1॥

श्रीकृष्ण-संकीर्तन की परम विजय हो जो हृदय में वर्षों से संचित मल का मार्जन करने वाला तथा बारम्बार जन्म-मृत्यु रूपी दावानल को शांत करने वाला है। यह संकीर्तन यज्ञ मानवता के लिए परम कल्याणकारी है क्योंकि चन्द्र-किरणों की तरह शीतलता प्रदान करता है। समस्त अप्राकृत विद्या रूपी वधु का यही जीवन है । यह आनंद के सागर की वृद्धि करने वाला है और नित्य अमृत का आस्वादन कराने वाला है ।

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्तिस्-

तत्रार्पिता नियमितः(स्) स्मरणे न कालः।

एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि,

दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नाऽनुरागः॥2॥

हे भगवन ! आपका मात्र नाम ही जीवों का सब प्रकार से मंगल करने वाला है-कृष्ण, गोविन्द जैसे आपके लाखों नाम हैं। आपने इन नामों में अपनी समस्त अप्राकृत शक्तियां अर्पित कर दी हैं । इन नामों का स्मरण एवं कीर्तन करने में देश-काल आदि का कोई भी नियम नहीं है । प्रभु ! आपने अपनी कृपा के कारण हमें भगवन्नाम के द्वारा अत्यंत ही सरलता से भगवत-प्राप्ति कर लेने में समर्थ बना दिया है, किन्तु मैं इतना दुर्भाग्यशाली हूँ कि आपके नाम में अब भी मेरा अनुराग उत्पन्न नहीं हो पाया है।

तृणादपि सुनीचेन, तरोरपि सहिष्णुना।

अमानिना मानदेन , कीर्तनीयः(स्) सदा हरिः॥3॥

स्वयं को मार्ग में पड़े हुए तृण से भी अधिक नीच मानकर, वृक्ष के समान सहनशील होकर, मिथ्या मान की कामना न करके दूसरों को सदैव मान देकर हमें सदा ही श्री हरिनाम कीर्तन विनम्र भाव से करना चाहिए ।

न धनं(न्) न जनं(न्) न सुन्दरीं(ङ्),

कवितां(वँ) वा जगदीश कामये।

मम जन्मनि जन्मनीश्वरे,

भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि॥4॥

हे सर्व समर्थ जगदीश ! मुझे धन एकत्र करने की कोई कामना नहीं है, न ही मैं अनुयायियों, सुन्दर स्त्री अथवा प्रशंनीय काव्यों का इच्छुक हूँ । मेरी तो एकमात्र यही कामना है कि जन्म-जन्मान्तर मैं आपकी अहैतुकी भक्ति कर सकूँ ।

अयि नन्दतनुज किङ्करं(म्) ,

पतितं(म्) मां(वँ) विषमे भवाम्बुधौ।

कृपया तव पादपं(ङ्)कज-

स्थितधूलिसदृशं(वँ) विचिन्तय ॥5॥

हे नन्दतनुज ! मैं आपका नित्य दास हूँ किन्तु किसी कारणवश मैं जन्म-मृत्यु रूपी इस सागर में गिर पड़ा हूँ । कृपया मुझे अपने चरणकमलों की धूलि बनाकर मुझे इस विषम मृत्युसागर से मुक्त करिये ।

नयनं(ङ्) गलदश्रुधारया ,वदनं(ङ्) गद्गद-रुद्धया गिरा।

पुलकैर्निचितं(वँ) वपुः(ख्) कदा, तव नाम-ग्रहणे भविष्यति॥6॥

हे प्रभु ! आपका नाम कीर्तन करते हुए कब मेरे नेत्रों से अश्रुओं की धारा बहेगी, कब आपका नामोच्चारण मात्र से ही मेरा कंठ गद्गद होकर अवरुद्ध हो जायेगा और मेरा शरीर रोमांचित हो उठेगा ।

युगायितं(न्) निमेषेण, चक्षुषा प्रावृषायितम्।

शून्यायितं(ञ्) जगत् सर्वं(ङ्), गोविन्दविरहेण मे॥7॥

हे गोविन्द ! आपके विरह में मुझे एक क्षण भी एक युग के बराबर प्रतीत हो रहा है । नेत्रों से मूसलाधार वर्षा के समान निरंतर अश्रु-प्रवाह हो रहा है तथा समस्त जगत एक शून्य के समान दिख रहा है ।

आश्लिष्य वा पादरतां(म्) पिनष्टु मा-

मदर्शनान्मर्महतां(ङ्) करोतु वा।

यथा तथा वा विदधातु लम्पटो,

मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः ॥8॥

एकमात्र श्रीकृष्ण के अतिरिक्त मेरे कोई प्राणनाथ हैं ही नहीं और वे ही सदैव बने रहेंगे, चाहे वे मेरा आलिंगन करें अथवा दर्शन न देकर मुझे आहत करें। वे नटखट कुछ भी क्यों न करें -वे सभी कुछ करने के लिए स्वतंत्र हैं क्योंकि वे मेरे नित्य आराध्य प्राणनाथ हैं ।

इति श्रीकृष्णदासकविराजविरचितं शिक्षाष्टकं सम्पूर्णम् ॥